विषय	हिंदी
प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक	**P2: मध्यकालीन कविता - 1**
इकाई सं. एवं शीर्षक	**M37: पद्माकर का काव्य**
इकाई टैग	**HND_P2_M37**

निर्माता समूह	
प्रमुख अन्वेषक	**प्रो. गिरीश्वर मिश्र** कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : misragirishwar@gmail.com
प्रश्नपत्र समन्वयक	**प्रो. कृष्ण कुमार सिंह** अधिष्ठाता, साहित्य विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : kks5260@gmail.com
इकाई लेखक	**डॉ. गजेन्द्र पाठक** प्रोफेसर, हिन्दी विभाग हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद 500046 ईमेल : gpathak.jnu@gmail.com
इकाई समीक्षक	**प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित** प्रोफेसर (सेवानिवृत्त), हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र) ईमेल : suryadixit123@gmail.com
भाषा संपादक	**प्रो. आनंद वर्धन शर्मा** प्रतिकुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : anandsharma_64@yahoo.co.in

पाठ का प्रारूप

1. पाठ का उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. निष्कर्ष

1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत आप-

- पद्माकर के महत्त्व को समझ सकेंगे।
- पद्माकर की काव्यभाषा के सौन्दर्य को जान सकेंगे।
- पद्माकर की कविताओं में अभिव्यक्त राजनीतिक चेतना से परिचित हो सकेंगे।
- हिंदी आलोचना में पद्माकर के योगदान को रेखांकित कर सकेंगे।

2. प्रस्तावना

कवि पद्माकर का संबंध रीतिबद्ध काव्य शाखा से है। उन्होंने परम्परा से चली आ रही काव्यांगों के लक्षण एवं उदाहरण की परिपाटी का ही अनुपालन अपनी रचनाओं में किया है। इस परिपाटी के अन्तर्गत रस, अलंकार और श्रृंगार इत्यादि काव्यरूपों का विवेचन-विश्लषण किया जाता है। पद्माकर के काव्य में इनका विषद चित्रण हुआ है। इस चित्रण-प्रक्रिया में पद्माकर ने अपनी प्रतिभा और अपनी अद्भुत क्षमता का प्रमाण दिया है और हिंदी साहित्य के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

पद्माकर का पूरा नाम पद्माकर भट्ट था। इनके पूर्वजों का संबंध तेलंगाना प्रदेश से था। हिंदी साहित्य के इतिहास लेखकों ने जहाँ कहीं भी इनका उल्लेख किया है वहाँ उन्हें तैलंग ब्राह्मण कहा है। मिश्रबंधुओं और शुक्ल जी ने इनका जन्म स्थान बांदा बताया है। पद्माकर की एक कविता में उनका परिचय इस रूप में मिलता है:

भट्ट तिलंगाने को बुंदेलखंड बासी कवि,
सुजस प्रकाशी पद्माकर सुजामा हौं।
जोरत कवित्त छंद छप्पय अनेक भांति,
संस्कृत प्राकृत पढ़ो जु गुनग्रामा हौं।
हय, रथ, पालकी, गयंद, गृह, ग्राम चारू,
आखर लगाय लेत लाखन की सामा हौं।
मेरे जान मेरे तुम कान्ह हौ जगत सिंह,
मेरे जान तेरो वह विप्र मैं सुदामा हौं।

बिहारी के बाद रीतिकाल के सबसे लोकप्रिय कवि के रूप में पद्माकर को ही जाना जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि, "रीतिकाल के कवियों में सहृदय समाज इन्हें बहुत श्रेष्ठ स्थान देता आया है। ऐसा सर्वप्रिय कवि इस काल के भीतर बिहारी को छोड़ दूसरा नहीं हुआ है।"1

अंतिम दौर के रीतिबद्ध काव्य परम्परा के कवियों में इनका स्थान सबसे ऊँचा है। ये रीतिकाल के अंतिम कवियों में से थे। इस काल के अंतिम दौर के कवियों में जितनी प्रसिद्धि इन्हें मिली उतनी इनके पश्चात् किसी को नहीं मिली। इसलिए जहाँ रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इनकी प्रशंसा करते हुए ये लिखा है कि, "भिखारी दास यदि रीतिकाल के अंतिम कवि हैं तो पद्माकर अंतिम प्रसिद्द कवि।"2

तो वहीं शुक्ल जी ने लिखा है, "रीतिकाल की कविता इनका और प्रतापसिंह की वाणी द्वारा अपने पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँच कर फिर ह्रासोन्मुख हुई। अतः जिस प्रकार ये अपनी परंपरा के परमोत्कृष्ट कवि हैं उसी प्रकार प्रसिद्धि में अंतिम भी। देश में इनका जैसा नाम गूँजा वैसा फिर आगे चलकर किसी और कवि का नहीं।"3

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'हिंदी साहित्य का अतीत' में 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज' के आधार पर इनकी 11 कृतियों का उल्लेख किया है-

1. अनुपगिरि हिम्मतबहादुर विरुदावली

2. ईश्वर पच्चीसी
3. गंगा लहरी
4. जगद्विनोद
5. जमुना लहरी
6. पद्माभरण
7. प्रबोध पंचाशिका
8. राजनीति
9. रामरसायन
10 लिलहारी लीला
11 विरुदावली (प्रतापसिंह विरुदावली)

इनमें से 'जमुना लहरी' और 'राजनीति' को उन्होंने अप्रकाशित बताया है। 'रामरसायन' भी पूर्णरूपेण प्रकाशित नहीं है। मिश्र जी ने उनके ग्रंथों की संख्या ग्यारह बताई है पर उनकी सात रचनाएँ ही चर्चित हुई हैं। मिश्र जी ने उनकी रचनाओं को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है -

1. प्रशस्ति काव्य
2. श्रृंगार काव्य
3. भक्ति-वैराग्य काव्य

प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत वे काव्य हैं जो आश्रयदाता की प्रशंसा में लिखे गए हैं। पद्माकर ने हिम्मतबहादुर, रघुनाथ राव, जयपुर के राजा प्रताप सिंह एवं जगत सिंह, उदयपुर के महाराणा भीम सिंह, ग्वालियर के सिंधिया महाराज और बूंदी महाराज जैसे आश्रयदाता राजाओं के यहाँ भरपूर सम्मान पाया था। हिम्मतबहादुर अवध बादशाह के यहाँ सेना के बहुत बड़े अधिकारी थे। 'हिम्मतबहादुर विरुदावली' जो वीर रस प्रधान रचना है वह वहीं लिखी गई थी। जयपुर के महाराज प्रताप सिंह के बेटे जगत सिंह के नाम पर उन्होंने 'जगद्विनोद' लिखा। वहीं पर उन्होंने अपना प्रसिद्ध अलंकार ग्रन्थ 'पद्माभरण' भी लिखा था। जीवन के अंतिम समय में उन्होंने रुग्णावस्था में 'प्रबोध पचासा' की रचना की जो भक्ति प्रधान रचना है। इसी दौर में उन्होंने कानपुर में प्रवास करते हुए 'गंगालहरी' की भी रचना की थी।

अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में कविता लिखना रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्ति थी। पद्माकर भी इस प्रवृत्ति से अछूते नहीं थे। इनकी प्रारंभिक रचनाएँ 'हिम्मतबहादुर विरुदावली' और 'प्रतापसिंह विरुदावली' पर इस प्रवृत्ति का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। ये दोनों वीर रस प्रधान रचनाएँ हैं। इनमें नायकों के शौर्य और वीरता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है। युद्ध की घटनाओं में अपने आश्रयदाता के पराक्रम को बढ़ा-चढ़ा कर दिखलाने का प्रयास किया गया है। 'हिम्मतबहादुर विरुदावली' में युद्ध का वर्णन स्वाभाविक प्रतीत होता है क्योंकि ऐसा माना जाता कि पद्माकर ने हिम्मतबहादुर का युद्ध अपनी आँखों से देखा था। जबकि प्रतापसिंह विरुदावली का नायक प्रताप सिंह के साथ ऐसी कोई घटना नहीं घटी थी जिसे उन्होंने अपनी आँखों से देखा हो। रीतिकाल की कविता में युद्ध विषयक प्रसंगों में यह बात ध्यान देने लायक है कि युद्ध वर्णन की परंपरा पुरानी है। वीरगाथा काल और भक्ति काल में भी युद्ध का वर्णन कवियों का प्रिय विषय रहा है। रीतिकाल की युद्ध विषयक कविताओं में अपने आश्रयदाता के शौर्य की चर्चा इस

प्रवृत्ति को वीरगाथा काल से जोड़ती है। प्रायः रीतिकाल की युद्ध विषयक कविताओं को हम उनकी उपलब्धि के रूप में रेखांकित करते हैं लेकिन मूल रूप से यह चली आ रही परम्परा का विकास और विस्तार ही है।

यह देखना होगा कि रीतिकाल की कविता के मूल्यांकन की प्रक्रिया में कहीं हम आलोचना में भी रीतिवादी प्रवृत्ति के शिकार तो नहीं हुए हैं ? आचार्य शुक्ल ने जो रास्ता दिखा दिया उसी लकीर के फकीर तो हम नहीं हुए हैं ? मिश्रबंधुओं ने अपने 'मिश्रबंधु विनोद' में लिखा है कि, "अन्य कवियों की भाँति पद्माकर जी ने प्रधानतः श्रृंगार-कविता न करके वीर और भक्ति-पक्ष को ही अधिक अपनाया। इके सात ग्रंथों में केवल 'जगद्विनोद' ही श्रृंगार-काव्य है, परंतु जनता की रूचि इसी ओर होने से इनका यही ग्रन्थ प्रसिद्ध हुआ। इसी कारण कवियों का रुझान श्रृंगार की ओर विशेष रूप से दीख पड़ता है।"4 श्रृंगार, शौर्य और भक्ति हिंदी के लिए कोई नई बात नहीं थी। विद्यापति से रीतिकाल तक की काव्य-यात्रा में इन तीनों प्रवृत्तियों का आनुपातिक अंतर देखा जा सकता है। विद्यापति ने जीवन में जिस श्रृंगार की कल्पना की थी वह दरअसल शंकराचार्य की दार्शनिक मान्यताओं का खंडन था जो इस संसार में किसी भी रचनात्मक उम्मीद के पक्ष में नहीं था। हिंदी साहित्य के इतिहास में आचार्य शुक्ल विद्यापति के महत्त्व को विद्यापति पर लिखते हुए समझ नहीं सके थे। उन्हें उनके महत्त्व का अहसास तब हुआ जब वे सूरदास पर लिख रहे थे। उन्होंने महसूस किया कि जो उदासी मिथिला में थी वही उदासी या खिन्नता ब्रजभूमि में भी थी। कविता क्या कर सकती है ? कविता इस उदासी या खिन्नता के खिलाफ वही कर सकती है जो विद्यापति ने किया, जो सूरदास ने किया। भक्तिकाल की कविता में प्रेम और उसके पहले और उसके बाद की कविता में श्रृंगार के इतिहास पर विचार करें तो इस बात पर विचार होना चाहिए कि विद्यापति ने जो शुरूआत की थी उसके श्रृंगार पक्ष को भक्ति कविता ने स्थगित किया था। रीति कवियों को इस बात का अहसास था कि अभी जीवन में श्रृंगार की जरूरत बनी हुई है। जनता की रुचियों का इतिहास तो हमारे पास उपलब्ध नहीं है लेकिन उनकी स्थिति का इतिहास अर्थात् अपने देश का राजनीतिक इतिहास हमारे पास मौजूद है। एक लंबी उदासी और गहरे अभाव से गुजरती हुई जनता यदि कविता में थोड़ी देर के लिए सुकून पाने की आकांक्षा रखती हो तो उस न्यूनतम जन आकांक्षा को भी सहानुभूतिपूर्वक समझे जाने की जरूरत है। रीतिकाल के कवियों को देश और राजनीति की ख़बर नहीं थी ऐसा मानने की जरूरत नहीं है। जहाँगीर पर केशवदास ने प्रबंध-काव्य लिखा था और पद्माकर ने 'राजनीति' नाम से ही किताब लिखी थी। यह इस बात का प्रमाण है कि रीतिकाल के कवि राजनीति से अनभिज्ञ नहीं थे। विद्यापति की कविता में सिर्फ श्रृंगार ही नहीं था बल्कि उनके यहाँ एक स्पष्ट राजनीतिक चेतना भी थी। विद्यापति की अनेक कविताएँ इसका प्रमाण हैं। कविता में श्रृंगार और राजनीति एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। यह हमने विद्यापति के यहाँ साफ देखा है। ठीक उसी तरह पद्माकर के यहाँ भी श्रृंगार है तो स्पष्ट राजनीतिक चेतना भी है। उनकी एक कविता है:

मीनागढ़, बंबई, सुमंद, मंदराज, बंग,
बंदर को बंद कर बंदर बसाओगे।
कहैं पद्माकर कसक कश्मीर हूँ को,
पिंजर सो घेरि के कलिंजर छुड़ाओगे।
बाका नृप दौलत अलीजा महराज कभौ,
साजि दल पकड़ फिरंगिन भगाओगे।
दिल्ली दहपट्टी, पटना हू को झपटि कर,
कबहूँ लत्ता कलकत्ता की उड़ाओगे।

पद्माकर रीतिकाल के अंतिम कवि थे और ब्रिटिश साम्राज्यवाद की वे सिर्फ आहट को ही नहीं पहचान रहे थे बल्कि यह भी देख रहे थे कि किस तरह भारत बहुत तेजी से गुलामी की बेड़ियों में जकड़ रहा है। यह कविता उन्होंने सिंधिया महाराज को चिट्ठी के रूप में लिखी थी। प्रो. मैनेजर पाण्डेय ने इस कविता को ललकार वाली कविता माना है। ऐसी परिस्थिति में कविता ललकार ही सकती है। पद्माकर की युद्ध संबंधी और वीर रस प्रधान कविताओं पर विचार करें तो एक बात तो स्पष्ट है कि भारतीय सामन्तवाद जिस तरह से आपस में लड़ते-भिड़ते नष्ट हो रहा था उसका लेखा-जोखा भी वीरगाथा काल की कविता से शुरू होकर रीतिकाल की कविता में मिलता है। पद्माकर की इन कविताओं की विशेषता यह है कि वे अपने काव्य नायकों से जो उम्मीद कर रहे थे वह उम्मीद उनकी निजी उम्मीद नहीं थी बल्कि तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए साधारण जनता की उम्मीद थी। प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' और भगवतीचरण वर्मा की कहानी 'मुगलों ने सल्तनत बख्श दी' को अगर पढ़ें और साथ-साथ तत्कालीन भारत का इतिहास भी पढ़ें तो समझ में आएगा कि मुगल साम्राज्य से ब्रिटिश साम्राज्य का सत्ता हस्तान्तरण कितना निरापद था। 1764 के जिस बक्सर के युद्ध से यह सत्ता हस्तान्तरण मुकम्मल हुआ उस युद्ध के बारे में यही किंवदंती है कि देश की बागडोर दूसरे हाथों में चली गई लेकिन जहाँ तथाकथित युद्ध हुआ उस युद्धभूमि के बगल में किसान और मजदूर हल चलाते रहे और खेती-बाड़ी का काम होता रहा। मतलब यह कि जनता अपने राजनीतिक नायकों से जिस प्रतिरोध की उम्मीद करती रही वह वहाँ था ही नहीं। सामान्य रूप से रीतिकाल और विशेष रूप से पद्माकर की युद्ध संबंधी कविताओं में हमें यह बात दिखाई पड़ती है कि ये युद्ध वर्णन इतिहास के यथार्थ भले ही न हों जनता की आकांक्षा के प्रतिरूप अवश्य हैं।

लंबे समय से भारत में आक्रमणकारियों के हमले और हमारे राजाओं की निष्क्रियता से जनमानस में जो असंतोष है वही असंतोष रीतिकाल के युद्ध सम्बन्धी कविताओं में भी दिखाई पड़ता है। राजा युद्ध नहीं करते थे। वे आसानी से समर्पण करने वाले थे। उनकी प्रवृत्तियाँ अलग थीं। देश के बारे में, जनता के बारे में नहीं सोचते थे। भोग-विलास में लिप्त रहते थे। जबकि जनता यह चाहती थी कि हमारा नायक शूरवीर हो, युद्धवीर हो, बलशाली हो। इसलिए युद्ध वर्णन होते थे। जो लोग कविता में इतिहास को ढूंढ़ते हैं उन्हें इस बात पर विचार करना चाहिए कि कविता में सिर्फ यथार्थ नहीं होता बल्कि यथार्थ के असंतोष से पैदा हुई कल्पना भी होती है। रीतिकाल की कविता में इन कल्पनाओं के समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र पर भी ध्यान देना चाहिए।

इन रचनाओं की उपयोगिता और उत्कृष्टता के बारे में लोगों के विचार चाहे जो भी हों ये रचनाएँ बहुत ही उम्दा बन पड़ी हैं। उदाहरण के तौर पर 'हिम्मतबहादुर विरुदावली' की ये पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं:

तहँ ढुक्का-ढुक्की मुक्का-मुक्की ढुक्का-ढुक्की होन लगी।
रन इक्का-इक्की झिक्का-झिक्की फिक्का-फिक्की जोर लगी।
काटत चिलता हैं इमि असि बाहैं तनहिं सराहैं बीर बड़े।
टूटैं कटि झिलमैं रिपु रन बिलमैं सोचत दिलमैं खड़े-खड़े।

उपर्युक्त पंक्तियों में युद्ध का सजीव वर्णन हुआ है। शब्दों के माध्यम से एक ऐसा बिम्ब उपस्थिति किया गया है मानों हमारी आँखों के सामने यह सब घटित हो रहा हो। युद्ध संबंधी दूसरी कविता इस प्रकार है:

तीखे तेगवाही जे सिलाही चढ़ै घोड़न पै।

स्याही चढ़ै अमित अरिंदन की ऐल पै।
कहै पद्माकर निसान चढ़ै हाथिन पै,
धूरी धार चढ़ै पाकसासन के सैल पै।
साजि चतुरंग चमू जंग जीतिबे के हेतु,
हिम्मत बहादुर चढ़त फर फैल पै।"
लाली चढ़ै मुख पै, बहाली चढ़ै बाहन पै,
काली चढ़ै सिंह पै, कपाली चढ़ै बैल पै।

उनका शब्द चयन बेजोड़ है। बिम्ब उपस्थित करने में तो इनके जैसा कोई अन्य रीतिकालीन कवि नहीं है।

पद्माकर के काव्य की दूसरी प्रवृत्ति है लक्षण ग्रंथों की। इन ग्रंथों में रस, अलंकार एवं काव्य के अन्य अंगों का लक्षण उदाहरण के रूप में दिखाई पड़ता है। लक्षण ग्रंथों की इस परिपाटी को आधार बनाकर उन्होंने दो ग्रंथों की रचना की थी। 'पद्मभारण' और 'जगद्विनोद'। 'पद्माभरण' अलंकार ग्रन्थ है तो जगद्विनोद रस का। रसों में श्रृंगार रस की प्रधानता है और नायक-नायिका भेदों के विषद विवेचन किए गए हैं। 'पद्मभारण' में दोहे-चौपाई की प्रधानता है तो 'जगद्विनोद' में दोहे, कवित्त और सवैया छंदों की। इसमें वर्णित एक सवैया तो बहुत ही प्रसिद्ध है जिसमें गोपियों और कृष्ण के होली का बिम्ब उपस्थित किया गया है -

फागु की भीर, अभीरिन में गहि गोविंद लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की पद्माकर, ऊपर नाई अबीर की झोरी।
छीनि पितंबर कम्मर तें सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाय कहौ मुसुकाय, 'लला फिरि आइयो खेलन होरी'।।

इन पंक्तियों द्वारा गोपियों और कृष्ण के बीच के प्रगाढ़ प्रेम का सजीव चित्र उकेरा गया है। श्रृंगार और प्रेम का ऐसा चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है। यहाँ कथित अश्लीलता का भी लेश मात्र प्रवेश नहीं हो पाया है। पद्माकर की यही विशिष्टता उन्हें अन्य कवियों से अलग कर देती है। 'जगद्विनोद' की विशेषता पर बात करते हुए शुक्ल जी ने लिखा है, "वास्तव में यह श्रृंगार रस का सार ग्रंथ सा प्रतीत होता है। इनकी मधुर कल्पना ऐसी स्वाभाविक और हावभावपूर्ण मूर्तिविधान करती है कि पाठक मानो प्रत्यक्ष अनुभूति में मग्न हो जाता है। ऐसी सजीव मूर्ति विधान करने वाली कल्पना बिहारी को छोड़कर और किसी कवि में नहीं पाई जाती है। ऐसी कल्पना असमर्थ पदावली के बीच व्यर्थ फड़फड़ाया करती है।"5 आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने पद्माकर के होली वर्णन की बहुत प्रशंसा की है। लोक उत्सवों में रीति कवि का मन अपनी शास्त्रीयता को स्थगित करते हुए यदि रमता हुआ दिखाई पड़ता है तो वह निश्चय ही लोक और शास्त्र के बीच एक संबंध को स्वीकार करता है। पद्माकर रीतिकाल और आधुनिक काल के संधि-बिंदु पर अवस्थित कवि हैं। रीति कविता पर शास्त्रीयता का जो बोझ था उसको कम करने की कोशिश पद्माकर के काव्य में दिखाई पड़ती है।

तीसरी श्रेणी उनकी भक्ति और वैराग्य संबंधी रचनाओं की है। इसके अन्तर्गत 'प्रबोध पचासा', 'ईश्वरपच्चीसी' और 'गंगा लहरी' ग्रन्थ आते हैं। ये रचनाएँ पद्माकर के जीवन के अंतिम चरण की हैं। इनमें भाषा के विविध रूप दिखाई पड़ते हैं। 'प्रबोध पचासा' की रचना उन्होंने रोग मुक्ति के उद्देश्य से की थी। इस संदर्भ में मिश्रबंधुओं ने लिखा है, "कहा जाता है कि अंत में यह कुष्ठ रोग से पीड़ित हो गए थे, अतः रोगमुक्त होने की अभिलाषा से इन्होंने प्रबोध

पचासा 51 छंदों का एक भक्ति-रस-पूर्ण ग्रन्थ बनाया।"6 इस ग्रन्थ की प्रशंसा करते हुए उन्होंने लिखा है कि, "यह ग्रन्थ बहुत सुन्दर बना है और पद्माकर के ग्रंथों में पूज्य दृष्टि से देखने योग्य है। इसके छंदों से निर्वेद टपकता है और लगता है कि संसार के अनुभवी और उससे उकताए हुए किसी वृद्ध जन ने इसे बनाया है।"7 वहीं 'कलि पच्चीसी' में कलियुग का वर्णन है। इसमें दुःख-शोक एवं रोग से पीड़ित जीवन का चित्रण किया गया है। ये रचनाएँ तुलसीदास की 'कवितावली' और 'हनुमानबाहुक' की याद दिलाती हैं। जीवन के लगभग अंतिम चरण में जीवन की निस्सारता का बोध उनकी इन पंक्तियों में दिखाई पड़ता है:

आसबस डोलत सु याको बिसवाल कहा
सांसबस बोले मल मांस ही को गोला है।
कहै पद्माकर विक हर छनभंगुर या
पाणी को सो फेन जैसे फलक फफोला है।
करम करोरा पंचतत्त्वनं बटोरा फेरि
ठोर ठोर जोला फेरि ठोर ठोर पोला है।
छोड़ हरिनाम नहीं पेहै विसराम अरे
निपट निकाम तन चाम ही को चोला है।

'गंगा लहरी' इनकी अंतिम रचना मानी जाती है। इसमें गंगा के सौन्दर्य का सुन्दर चित्रण मिलता है:

कहै पद्माकर सु धौरी-धौरी दौरी आवै
चैरी-चैरी चंचल सुचारू चिह्नवारिये।
छहरैं छबीली नई-नई न्यारी-न्यारी नित
लहरैं निहारि प्यारी गंगा रू तिहारियै।

पद्माकर की काव्य-भाषा पर विचार करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उनकी भाषा में अनेकरूपता को रेखांकित किया है। भाषा की यही विशेषता किसी कवि को बड़ा कवि बनाती है। शुक्ल जी ने इस प्रसंग में उनकी तुलना तुलसीदास से की है। 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में उन्होंने लिखा है, "भाषा की सब प्रकार की शक्तियों पर इस कवि का अधिकार दिखाई पड़ता है। कहीं तो इनकी भाषा स्निग्ध, मधुर पदावली द्वारा एक सजीव भावभरी प्रेम मूर्ति खड़ी करती है, कहीं भाव या रस की धारा बहाती है, कहीं अनुप्रासों की मीलित झंकार उत्पन्न करती है, कहीं वीरदर्प से क्षुब्ध वाहिनी के समान अकड़ती और कड़कती हुई चलती है और कहीं प्रशांत सरोवर के समान स्थिर और गंभीर होकर मनुष्य जीवन को विश्रांति की छाया दिखाती है।"8

आचार्य शुक्ल ने पद्माकर के काव्य में मौजूद लाक्षणिकता की प्रवृत्ति को भी रेखांकित किया है और इसके लिए उनकी प्रशंसा की है। रीति काव्य में जहाँ कहीं भी लाक्षणिकता दिखाई पड़ती है, वह उनके लिए बेहद उत्साह और संतोष का विषय है। लाक्षणिकता के कारण ही वे घनानंद के मुरीद थे। इसके अलावा उनकी भाषा की एक खास विशेषता और भी है जिसका संबंध अनुप्रास से है। वैसे तो यह प्रवृत्ति रीतिकाल के प्रायः सभी कवियों में पाई जाती है लेकिन पद्माकर इनमें अलग दिखाई पड़ते हैं। उनके शब्दों की कोमलता एवं भावों की मधुरता अन्य कवियों से बिल्कुल अलग है। उदाहरण के लिए उनकी निम्न पंक्तियों को देखा जा सकता है:

झपि झपि उझकि झपाक झपि झूमि झूमि
झमेकै झुकौहैं झझकौहैं सिल सगमगे।
कहै पद्माकर लचैहैं ललचैहैं लोल
ललित लजीले लाल डोरन सों डगमगे
जागे जाम जाम जामिनी के जोति जालन सों
जाहिर जवाहिर से जोराजोर जगमगे।
नागरि नवेली अलबेली के नसीले दृग
राजत रसीले अरसीले रंग रगमगे।

उनकी यह विशेषता उन्हें औरों से अलग भले ही कर देती हो परंतु कहीं-कहीं अकारण अनुप्रास के चमत्कार को दिखाने के प्रयत्न में उनकी रचना थोड़ी कमजोर भी हुई है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि कविता में अर्थ नहीं बिम्ब ग्रहण होता है। बिम्ब निर्माण की यह क्षमता पद्माकर के काव्य की एक विशेष उपलब्धि है। इस संदर्भ में उनका यह पद द्रष्टव्य है:

लाल-लाल टेसू फूलि रहे हैं बिसाल संग,
स्याम रंग भेंटि मानों मसि में मिलाए हैं।
तहां मधु काज आई बैठे मधुकर पुंज,
मलय पवन उपवन वन धाये हैं।

3. निष्कर्ष

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि रीतिकाल के अंतिम समय में पद्माकर ने अपनी बहुज्ञता का परिचय देकर अपनी कविताओं, भाषा-शैली और बिम्बात्मक प्रतिभा के बल पर बिहारी के बाद रीतिकाल के सबसे महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में अपना स्थान बनाया है। रीतिकाल के कवियों में बिहारी के बाद कोई कवि लोकप्रियता के शिखर पर पहुँचा है तो वह पद्माकर ही हैं। 'मिश्रबंधु विनोद' में पद्माकर के महत्त्व का आकलन करते हुए उत्तरालंकृत प्रकरण में जिस आखिरी काल का उल्लेख किया गया है, वह 'पद्माकर काल' ही है।